आशौचापवाद

(अर्थात् किस किस अवस्था में अशौच अथवा सूतक व्याप्त, प्रवृत्त अथवा प्रभावी नहीं होता है)

अथ कर्तृभेदात्, कर्मभेदात्, द्रव्यभेदात्, मृतदोषात्, वचनाच्चाशौचं क्वचिदपोद्यते। त एते पञ्चाधिकाराः प्रदर्श्यन्ते ।

आशौच अपवाद के अंतर्गत कर्ता, कर्म, द्रव्य भेद, मृतदोष तथा विशेष व्यक्ति के वचन से होने वाले आशौच के परिहरण से सम्बन्धित पांच अधिकारों का विवेचन इस प्रकार है-

1- कर्तृभेदाधिकारः । (कर्तृविशेषादाशौचाभावः)

कर्त्तार इहाशौचग्रहीतृत्वेन विवक्षिताः । तेषां षड्विधाः स्ववैशेष्यादेव निमित्तादाशौचं नार्हन्ति । तथा हि ब्रह्मचारिणो वनस्थाः संन्यासिनश्चेति त्रिविधा भिन्नाश्रमाः। भिन्नाश्रमत्वादेव निमित्तादस्यामाशौचव्यवस्थायां नाधिक्रियन्ते। आशौचव्यवस्थाया गृहस्थाश्रमधर्माङ्गत्वात्। अथ कृतजीवच्छ्राद्धाः पतिताश्चेति द्विविधा धर्मच्युता गृहस्थत्वेऽपि स्वधर्मच्युतिहेतोरस्यामाशौचव्यवस्थायां नाधिक्रियन्ते। स्वधर्मस्थाधिकारेणाशौचव्यवस्थायाः प्रवृत्तत्वात्। अथान्यः षष्ठ आपन्नः। स च कष्टायामापदि

स्वास्थ्यालाभादशक्तत्वादेवास्यामाशौच-व्यवस्थायां नाधिक्रियते धर्मादेशस्य तदाचरण-समर्थाधिकारेण प्रवृत्तेः। तदित्थमेते षडप्यनधिकारिणो नाशौचमर्हन्तीति सिद्धम् । तेषां विभेदेन नियमा वक्ष्यन्ते ।

कर्तृभेदाधिकार (कर्तृविशेष से आशौच का अभाव)

कर्ता का तात्पर्य है आशौच से सम्बद्ध व्यक्ति । ये छः प्रकार के होते हैं। जो अपनी विशेषता के कारण आशौच से सम्बद्ध नहीं होते हैं। जैसे कि ब्रह्मचारीगण, वानप्रस्थ और संन्यासी ये तीनों अलग -अलग आश्रमों में निवास करते हैं । भिन्न आश्रमवासी होने के कारण इस आशौच व्यवस्था से ये प्रभावित नहीं होते हैं क्योंकि आशौच-व्यवस्था तो गृहस्थाश्रम में निवास करने वालों के धर्म का अङ्ग है। यहाँ इसी के साथ यह भी जान लेना आवश्यक है कि जीते जी श्राद्धकर्म किये हुए और पतित ये दो तरह के धर्म-आचरणभ्रष्ट लोग गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी अपने धर्म से पतित होने के कारण इस आशौच व्यवस्था से सम्बधित नहीं है अर्थात् उनका आशौचकृत्यों में अधिकार नहीं है, क्योंकि अपने धर्म से सम्बन्धित अधिकार से ही आशौच व्यवस्था का चरितार्थ होना दिखाई पड़ता है। इनके स्वास्थ्य के अलावा छठा आपत्तिग्रस्तरूप है। कष्टप्रद आपत्ति की स्थिति में,

अनुकूल न रहने से, सामर्थ्य विहीन होने से उस व्यक्ति का आशौच व्यवस्था में अधिकार नहीं है क्योंकि धर्म विषयक आदेश तो उसका आचरण करने में समर्थ व्यक्ति के अधिकार से प्रवृत्त है। इस प्रकार से छः प्रकार के लोग भी अधिकारी न होने से आशौच से सम्बद्ध नहीं होते हैं। इनके अलग-अलग होने से इनके नियम भी बताये जा रहे हैं।

(ब्रह्मचारिणां यत्यादीनां आशौचव्यवस्था)

(1- ब्रह्मचारियों और यतिजनों से सम्बद्ध आशौच व्यवस्थाएँ)

नैष्ठिकानामुपकुर्वाणानां च ब्रह्मचारिणामनुपनीतानां च द्विजातिबालकानां स्पर्शाशौचं कर्माशौचं वा द्विविधमपि जन्माशौचं नास्ति ।

नैष्ठिक और उपकुर्वाण ब्रह्मचारियों तथा उपनयनरहित द्विजाति बालकों को स्पर्श सम्बन्धी आशौच एवं कर्म से सम्बन्धित आशौच जन्माशौच से होने वाला आशौच प्रभावित नहीं करता है।

अथ ब्रह्मचारिणामनुपनीतानां च द्विजातिबालकानां सपिण्डमरणेऽपि नाशौचं नापि तन्निर्हारदाहाद्यौर्ध्वदेहिककर्मस्वेषामधिकारः ।

ब्रह्मचारी और यज्ञोपवीतरहित द्विज बालकों को सपिण्ड में पैदा हुए व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर

भी न तो आशौच होता है तथा न ही उसके शववहन, दाह आदि मृत्यु के उपरान्त होने वाले कर्म में ही उसका अधिकार होता है।

अथाज्ञानान् निर्हारदाहाद्यौर्ध्वदेहिके कर्मणि कथंचित् कृते सति तु ब्रह्मचारिणः पुनरुपनयनं कृच्छ्रप्रायश्चित्तं चादिश्यते। किन्तु पितृमात्राचार्योपाध्याय-मातामहानामन्तिमकर्मकरणेऽपि न ब्रह्मचारिणो दोषः। अत एव तत्र कृते सति दशाहं स्पर्शाशौचमनुवर्तते। कर्माशौचं तु नास्ति ।

यदि अज्ञानवश निर्हार (कन्धे पर शव को वहन करना), दाह आदि शरीरोत्तर क्रिया को कर भी देता है तो उस ब्रह्मचारी का पुन: उपनयन संस्कार और कृच्छ्रप्रायश्चित्त करने का आदेश है। किन्तु पिता-माता - आचार्य - उपाध्याय - मातामह (नाना) आदि के अन्त्येष्टि कर्म करने पर भी ब्रह्मचारी को दोष नहीं लगता है इसलिए इस स्थिति में दशाह स्पर्शाशौच तो होता है किन्तु कर्माशौच नहीं होता है।

अन्ये त्वाहुः। मातापित्रादीनामन्तिमकर्मकरणेऽपि एकाहमेव स्पर्शाशौचं ब्रह्मचारिणो भवति न त्वधिकम्। किन्तु यद्यसावशौचिनामन्नं भक्षयति तदैव ब्रह्मचारिणो दशाहाशौचप्राप्तिने त्वन्यथा। अन्त्यकर्माकरणे त ब्रह्मचारिणः पित्रादितु मरणेऽप्याशौचं नास्त्येवेति ।

अन्य विद्वानों का मानना है कि माता-पिता आदि के अंतिम कर्म करने पर भी ब्रह्मचारी को एक दिन का ही स्पर्शाशौच होता है, इससे अधिक नहीं। किन्तु यदि वह आशौची व्यक्ति के अन्न को ग्रहण करता है तभी उस ब्रह्मचारी को दशाह आशौच लगता है अन्यथा नहीं। अन्त्य कर्म न करने पर तो पिता आदि की मृत्यु होने पर भी ब्रह्मचारी को आशौच नहीं लगता है।

पित्राद्याशौचेऽपि ब्रह्मचारी नाशौचिनामन्नं भक्षयेत् । भक्षणे तु पुनरुपनयनम् ।

पिता आदि से सम्बन्धित आशौच के होने पर ब्रह्मचारी को आशौची के अन्न का भक्षण नहीं करना चाहिये। उस अन्न भक्षण की स्थिति में तो पुनः उपनयन संस्कार किया जाना आवश्यक है ।

समावर्तनोत्तरं तु पूर्वमृतानां मातापित्रादीनां त्रिदिनमाशौचं ब्रह्मचारिणा कार्यम्। वानप्रस्थानां संन्यासिनां च किमप्याशौचं नास्ति । तेषामपि मरणे पूर्वसम्बन्धिनां मातापित्रादीनामाशौचं नास्ति । तत्रेह संन्यासिपदेनैकदण्डिहंसपरमहंसा ग्राह्याः । त्रिदण्डिप्रभृतीनां तु यतीनां पृथनियमा उक्ताः।

समावर्तन संस्कार के अनन्तर तो पहले मृत्यु को प्राप्त हुए माता-पिता आदि से सम्बन्धित तीन दिन का आशौच ब्रह्मचारी को करना चाहिये । वानप्रस्थों और संन्यासियों को तो किसी भी प्रकार

का आशौच नहीं लगता है। इसी प्रकार इन दोनों ही आश्रमस्थ लोगों की भी मृत्यु हो जाने पर पहले के सम्बन्धी माता-पिता आदि को आशौच नहीं लगता है। यहाँ संन्यासी पद से एक दण्डधारी (दण्डी), हंस, परमहंस को समझने चाहिये। त्रिदण्डी आदि यतिजनों के लिए अलग से नियम बताये गये हैं।

नैष्ठिकब्रह्मचारिणां चतुर्थाश्रमिणां च वानप्रस्थानां च ग्रामादौ भिक्षाग्रहणाय लब्धाधिकाराणां तथा अन्येषामपि सर्वप्रतिग्रहनिवृत्तानां भिक्षामात्रवृत्तीनां यतीनामाशौचिभिक्षाग्रहणे दोषो नास्ति। उपकुर्वाणब्रह्मचारिणां तु गृहस्थानामिवाशौचिगृहाद् भिक्षाग्रहणे दोषः स्यादेव। एवमन्येषामपि केषांचिद् प्राग् गृहीतनियमानां तत्तन्नियमानुरोधेनाशौचमवरुध्यते।
नैष्ठिक ब्रह्मचारी, चतुर्थ आश्रम में निवास करने वाले और वानप्रस्थी जनों के गाँव आदि में भिक्षा ग्रहण करने के लिए अधिकृत होने से तथा और भी सभी दान, उपहार आदि से निवृत्त भिक्षामात्रवृत्ति वाले यति जनों को आशौची के घर भिक्षा ग्रहण में कोई दोष नहीं है। किन्तु उपकुर्वाण ब्रह्मचारियों को तो गृहस्थ लोगों की तरह ही आशौची के घर से भिक्षा ग्रहण करने पर दोष लगता ही है। इसी तरह अन्य भी पहले से लिये हुए नियम वाले कतिपय जनों के उन-उन नियमों

के अनुसार आशौच नहीं लगता है।

कृतजीवच्छ्राद्धेन किमप्याशौचं नानुरोध्यमिति हेमाद्रिः। कृतजीवच्छ्राद्धस्यापि योगाभ्यासमकुर्वतो गृहस्थवृत्तेरशौचमनुवर्त्तत एवेत्यन्ये। योगिनामेव तेषामशौचनिवृत्तेरौचित्यात्।

जीवित श्राद्ध किये हुए व्यक्ति को किसी भी प्रकार का आशौच नहीं लगता है, ऐसा हेमाद्रि का अभिमत है। जबकि अन्य विद्वानों के अनुसार जीते जी स्वयं श्राद्ध किये हुए व्यक्ति को, यदि वह योगाभ्यास नहीं करता है तो गृहस्थ की तरह उसे भी आशौच प्रभावित करता है। योगीजन की ही उस आशौच से निवृत्ति बताया जाना उचित है।

यस्य तु घटस्फोटः कृतस्तस्यान्यस्य च तथाविधस्य जातिबहिष्कृतस्य पतितस्याशौचं नास्ति।

जिसके श्राद्ध का घड़ा फोड़ा है (घण्टफोड़) उसको तथा उस तरह के अन्य जाति से बहिष्कृत और पतित (आचरण भ्रष्ट) व्यक्ति को आशौच नहीं लगता है।

आतुराणां स्वदेशभ्रष्टानां कष्टापद्ग्रस्ताना-मुपसर्गोपद्रवाद्यभिभूतानां च सद्यः शौचमाहुः। तत्रोपसर्गोऽत्यन्तनरकादिदैवभयम्। उपद्रवस्तु स्वचक्रपर चक्रराष्ट्रभङ्गादिलोकभयम्। तत्र

विशेषविप्लवदशायामस्वस्थतायामशौचं नोपसर्पतीति दिक् ।

। इतिकर्तृभेदाधिकारः ।

रोगी, अपने देश से बहिष्कृत, कष्ट आपद्ग्रस्त उपसर्ग (बीमारी) उपद्रव आदि संकटों से घिरे हुए व्यक्ति को सद्यः शौच प्रभावित करता है - यह कहा गया है। इनमें उपसर्ग का तात्पर्य है अत्यन्त पीड़ादायक नरक आदि से सम्बन्धित दैवभय और उपद्रव का अर्थ है—आन्तरिक अथवा बाह्य शत्रुओं द्वारा राष्ट्रभङ्ग आदि लोकभय । इसमें विशेष संकट की स्थिति में अथवा अस्वस्थता में आशौच नहीं लगता है - यह समझना चाहिये । यह कर्तृभेदाधिकार है।

कर्मभेदाधिकारः (1 – कर्मविशेषादाशौचाभावः)

कर्मभेदाधिकारः (1 -अर्थात् कर्म विशेष से सम्बन्धित होने से आशौच का न लगना)

अथाशौचसम्बन्धप्रतिबन्धिविशेषवतामनन्यगतिकानामार्तिगृहीतानां च कर्मणां प्रारम्भे जाते तत्कर्मदीक्षान्वितानां गृहीतनियमानां नाशौचमुपसर्पतीति द्वितीयाधिकारः प्रवर्त्तते ।

आशौच के सम्बन्ध में विशेष रूप से रुकावट डालने वाले एकमात्र शारीरिक या मानसिक पीड़ा से युक्त व्यक्ति से सम्बन्धित कार्यों के प्रारम्भ हो जाने पर उस कर्मानुष्ठान में दीक्षित एवं नियम विशेष को ग्रहण किये हुए व्यक्ति को आशौच का प्रभाव नहीं होता है वहां इस प्रकार यह द्वितीय अधिकार प्रवृत्त होता है।

(2 –तीर्थयज्ञविवाहादौ)
(तीर्थ यज्ञ - विवाह आदि में आशौचापवाद)

तीर्थे, यात्रायाम्, उत्सवे, युद्धे, व्रते, सत्रे, यज्ञे, विवाहे, श्राद्धे, प्रतिष्ठायाम्, यजने, होमे, अर्चने, जपे, दाने, संस्कारे, तत्साधर्म्यवति चान्यत्रापि नियतकालकर्त्तव्ये कर्मविशेषे समारब्धा समाप्ते सति तत्राधिकृतानां दीक्षितानाम्, ऋत्विजां, सत्रिणां, व्रतिनां तथा राज्ञां, राजवत् संभ्रान्तानां राजभृत्यानां तथैव भिषजां, कारूणां, शिल्पिनां, आमसाधारणकर्मकरभृत्यानां, चाशौचसङ्कोचो भवति। विशेषकर्मानुरोधात्। तत्रैते विशिष्य नियमा द्रष्टव्याः।

तीर्थ, यात्रा उत्सव, युद्ध, व्रत, सत्र (13 से 100 दिन तक चलने वाले) यज्ञ, देवपूजा से सम्बन्धित अनुष्ठान, विवाह, श्राद्ध, घर की नींव, देवप्रतिमा आदि की स्थापना, यज्ञानुष्ठान, होम, अर्चना, जप,

दान, संस्कार और इनके गुण धर्म वाले अन्य रूपों में भी निश्चित अवधि के लिए किये जाने योग्य अनुष्ठान विशेष के प्रारम्भ हो जाने पर किन्तु पूर्णता को न प्राप्त होने की स्थिति में उनमें अधिकृत दीक्षित, ऋत्विक् (यज्ञ करने वाले) सत्री (यज्ञ से सम्बन्धित व्यक्ति), व्रत ग्रहण किये हुए तथा राजा एवं राजा के समान सम्भान्त राजसेवक और उन्हीं के समान वैद्य, कारीगर, शिल्पकार, गांव में साधारण कार्य करने वाले सेवक को आशौच का विशेष प्रभाव नहीं होता है। इसका कारण यह है कि ये सभी विशेष कर्म से जुड़े हुए होते हैं। उस स्थिति में इनके नियमों को अलग से ध्यान में रखना चाहिये ।

अपूर्वतीर्थविशेषे प्राप्तौ सत्यां तन्निमित्तकावश्यक-स्नानदानादिकर्मणि तीर्थादिविशिष्टयात्रायां पूर्वप्रक्रान्तायां रथयात्राद्युत्सवसमारम्भे युद्धे च प्रवृत्ते नाशौचं सज्जते।

अपूर्व तीर्थ विशेष में उपस्थित होने पर उससे सम्बन्धित आवश्यक स्नान-दान आदि कार्यों में तथा तीर्थ आदि से सम्बन्धित विशेष यात्रा में एवं पहले से ही चलने वाले रथ यात्रा आदि उत्सव के होने पर तथा युद्ध के प्रारम्भ हो जाने पर आशौच का प्रभाव नहीं होता है।

कृच्छ्रचान्द्रायणादिव्रते, अन्नसत्रादिलघुसत्रे, दर्शपौर्णमासादियज्ञे, नगरदेवालयादिप्रतिष्ठाकर्मणि, तड़ागोत्सर्गकोटिहोमादियजने, होमे, अर्चने, पुरश्चरणस्तोत्रपाठादिजपकर्मणि, अविच्छेदेन संकल्पित- हरिवंशपारायणादिश्रवणकर्मणि व्रतबन्धोपनयनचूडाकर्मादिसंस्कारकर्मणि, विवाहे श्राद्धकर्मणि, आतुरव्याधिनाशार्थकतुलापुरुषादि-दानकर्मणि-चारब्धासमाप्ते यद्यन्तरा सूतकं मृतकं वा श्रूयते तदा तदारब्धकर्मणो निवृत्तिर्नास्ति। न वा तत्कर्मकर्तृभिस्तदाशौचमनुरोध्यम्। तदितरकर्मसु तु तदाशौचानुरोधः स्यादेव। भगवान् यमस्त्वाह - आशौचवता क्रियमाणे कर्मणि यदि किञ्चिद्दैवं भयमुत्तिष्ठते, प्रधानाङ्गं वा तत्र विनाशमाप्नोति, तदात्वे तदाशौचप्रयुक्तकर्मप्रतिरोध एव कार्य्यः। आशौचनिवृत्तौ पुनः कुर्वीत। अथ व्रताद्यारम्भात् प्रागेव तु श्रवणे तदाशौचानुरोधात् करिष्यमाणानामेषां व्रतादीनामपि यावदाशौचं निवृत्तिः स्यात्। व्रताद्यारम्भसमयस्त्वित्थं स्मर्यते ।

प्रायश्चित्त की दृष्टि से कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रत करने पर, अन्न सत्र आदि थोड़े दिन तक चलने वाले सत्र, अमावस्या एवं पूर्णिमा को सम्पन्न होने वाले दर्शपौर्णमास आदि यज्ञ, नगर-देवालय आदि की प्रतिष्ठा (नींव) से सम्बन्धित कार्य, सरोवर का उत्सर्ग (दान), करोड़ों आहुतियों वाले यज्ञ, होम,

अर्चना, पुरश्चरण, स्तोत्रपाठ, जप आदि निरन्तर चलते रहने वाले संकल्पित हरिवंश पारायण आदि को सुनने से सम्बन्धित, व्रतबन्ध, उपनयन, चूड़ाकर्म आदि संस्कार से सम्बन्धित कार्यों में विवाह में, श्राद्धकर्म में, अत्यधिक रोगग्रस्त व्यक्ति के रोग नाश के लिए तुलापुरुष आदि से सम्बन्धित दान कर्म इन सबके प्रारम्भ किन्तु पूर्ण न होने की स्थिति में यदि सूतक अथवा मृतक से सम्बन्धित समाचार सुनाई पड़ता है तो प्रारम्भ किये गये कार्य को रोका नहीं जाता है तथा न ही उन-उन कर्म का अनुष्ठान करने वाले को वह आशौच प्रभावित करता है। इनसे भिन्न कर्म में तो वह आशौच लागू होता है। महर्षि यम के अनुसार- आशौच से युक्त व्यक्ति के द्वारा किये जाने वाले कार्य में यदि किसी प्रकार का दैवी भय उत्पन्न होता है, मुख्य कर्म में कोई बाधा आ जाती है ऐसी स्थिति में आशौच के चलते रहने पर उस कार्य को रोक देना चाहिये। आशौच के समाप्त हो जाने पर पुनः उस कर्म को करना चाहिये। इसी तरह व्रत आदि के प्रारम्भ करने से पूर्व ही आशौच के सुनाई पड़ जाने पर उस आशौच के कारण किये जाने वाले व्रत आदि कर्म को भी आशौच निवृत्ति पर्यन्त रोक देना चाहिये । व्रत इत्यादि के आरम्भ का समय इस प्रकार बताया गया है

प्रारम्भो वरणं यज्ञे सङ्कल्पो व्रतसत्रयोः। (जापयोः)

नान्दीश्राद्धं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया॥
निमन्त्रणं तु वा श्राद्धे प्रारम्भः स्यादिति स्मृतिः ।

यज्ञ, सत्र, व्रत आदि में प्रार्थना, तदनन्तर सङ्कल्प किया जाना चाहिये । इसी प्रकार विवाह आदि में नान्दीश्राद्ध तथा श्राद्धकर्म में पाकपरिक्रिया अथवा निमन्त्रण को स्मृतिकारों ने प्रारम्भ के रूप में बताया है ।

इह वरणशब्देन प्रार्थनामारभ्य मधुपर्कग्रहणान्तं कर्म ज्ञेयम्। न तु प्रार्थनामात्रम्। मधुपर्कग्रहणोत्तर-मेवाशौचाभावस्य सिद्धान्तात्। अतएवाधानेष्टिपशुबन्धादौ यत्र न मधुपर्कविधिस्तत्र सत्यपि प्रार्थनात्मके वरणेऽशौचं प्राप्नोत्येव एवं प्राप्ताशौचा ऋत्विजस्त्यज्यन्ते। अन्ये पुनर्व्रियन्ते । यत्र वा यज्ञे दीक्षाविधिस्तत्र दीक्षणीयेष्ट्यनन्तरमशौचाभाव इत्यवधेयम्। समाप्तिस्तु यज्ञेऽवभृथस्नानम्। अन्यत्र विसर्जनादयो लोकप्रतिपन्नास्तत्र तत्र ते तेऽर्थाः प्रकरणाद् ग्राह्याः ।
यहाँ 'वरण' शब्द से प्रार्थना से प्रारम्भ करके मधुपर्कग्रहण पर्यन्त कर्म को समझना चाहिये न कि केवल प्रार्थना को । क्योंकि मधुपर्क ग्रहण के बाद ही आशौच की निवृत्ति मानी जाती है। इसलिए आधानेष्टि और पशुबन्ध आदि में जहाँ मधुपर्कविधि का विधान नहीं है वहाँ प्रार्थना रूप वरण में भी आशौच तो रहता ही है । इस प्रकार जिन्हें आशौच लग गया है उन ऋत्विक्जन को

वहाँ से दूर करके बाद में अन्य का वरण किया जाना चाहिये । और जहाँ यज्ञ कर्म में दीक्षा का विधान है वहाँ दीक्षणीय इष्टि करनी चाहिये, क्योंकि इस इष्टि के अनन्तर आशौच की निवृत्ति हो जाती है - ऐसा समझना चाहिये । यज्ञ की पूर्णता तो उसमें अवभृथ स्नान पर ही मानी जाती है । इसके बाद विसर्जन आदि जो भी लोक में विधान बताया गया है वहाँ उन विषयों को प्रकरण के अनुसार ग्रहण कर लेना चाहिये ।

3 – आगमोक्ते स्मार्ते वा कर्मणि ।

आगमों में तथा स्मृतियों में वर्णित कर्म विषयक आशौचापवाद

आगमोक्तकाम्यपूजनादिनियमे तु प्रक्रान्ते यद्याशौची स्यात् तदा तु मानस्या प्रक्रियया ध्यानयोगात् मन्त्रस्मरणपूर्वकं सर्वमावृत्तं सम्पादयेत्, न मन्त्रमुच्चारयेत् । निष्कामपूजनादिनियमे तु प्रक्रान्ते नाशौचानुरोधं कुर्यात् । सर्वं पूर्ववदाचरेत्।

आगमों में वर्णित काम्यकर्म से सम्बन्धित पूजन आदि नियम के प्रारम्भ कर दिये जाने पर यदि वह व्यक्ति आशौच से युक्त हो जाता है तो मानसिक प्रक्रिया के द्वारा ध्यानयोग से मन्त्र का स्मरण करते हुए, मन्त्र का उच्चारण न करते हुए सभी

कर्म का सम्पादन करना चाहिये। निष्काम भाव से किये जाने वाले पूजन आदि नियम के प्रारम्भ कर दिये जाने पर आशौच की परवाह न करते हुए पहले की तरह ही समस्त कर्म को करना चाहिये।

स्मार्तं कर्म द्वेधा – त्याज्यमत्याज्यं च । तत्र यत् त्याज्यं तदाशौचे प्राप्ते सन्त्यजेत्। आशौचनिवृत्तौ पुनः कुर्यात् । अथ यदत्याज्यं तदाशौचे प्राप्ते सत्यसगोत्रेण कारयेत्। यावदाशौचं स्वयं न कुर्यात् । क्वचिद्वा होमादौ कर्मविशेषे कर्तव्यतया नियते सत्यकृतान्नेन ब्रीह्यादिना, कृताकृतान्नेन तन्दुलादिना वा, फलेन वा तत्कर्म कुर्यात् कारयेद्वा अनियते तु न कुर्यात् ।

स्मार्तकर्म दो प्रकार का होता है - त्याज्य और अत्याज्य । इनमें त्याज्य कर्म को आशौच के आ जाने पर छोड़ देना चाहिये। आशौच से निवृत्त होने पर उसे पुन: करना चाहिये। और इसके बाद जो अत्याज्य अर्थात् छोड़ने योग्य नहीं है उसे आशौच से प्रभावित होने पर भी सगोत्र से भिन्न व्यक्ति से तब तक करवाना चाहिये, जब तक स्वयं आशौच से निवृत्त न हो जाय अर्थात् आशौच पर्यन्त स्वयं न करे । अथवा किसी होम आदि विशेष कर्म के किये जाने वाला होने से अकृतान्न व्रीहि, चावल आदि के द्वारा अथवा फल से वह कर्म या तो स्वयं के द्वारा करना चाहिये । अथवा करवाना

चाहिये, कर्तव्य कर्म के रूप में नियत न होने पर उसे आशौच काल में नहीं करना चाहिये ।

श्रौतेऽप्येवं नियमानियमतो व्यवस्था । तेन येषां बवृचादीनां दशरात्र-महोमेऽपि नाग्निविच्छेदः कल्पेऽभ्युपगम्यते, तैरशौचे प्राप्तेऽग्निहोमो न कार्यः । आशौचोत्तरं पुनस्तत्रैवाग्नौ होमसिद्धिर्न तु पुनराधानाद्यावश्यकता। अथ तैत्तिरीयादीनां येषां चतूरात्रमहूयमानोऽग्निर्लौकिकः सम्पद्यते तेषां होमनियमाच्छुष्कान्नेन फलादिना वा तत् कर्म कुर्यादिवेति सिद्धान्तः। समारूढे त्वग्नौ तैरपि होमो न कार्यः। किन्तु पुनराधानमेव तत्र कृत्वा होमादि कुर्यात्।

श्रौत कर्म में भी इसी प्रकार से होने वाली व्यवस्था समझनी चाहिये। इससे जिन ऋग्वेदी आदि का दशरात्रिपर्यन्त हवनकर्म नहीं होता है उसका अग्निविच्छेद नहीं माना जाता है। अतः उसके आशौच की स्थिति में अग्नि में आहुति नहीं देनी चाहिये । आशौच के पश्चात् पुनः उसी अग्नि में हवन कर्म करना चाहिये, उसे फिर से उस यज्ञ कुण्ड में अग्न्याधान की आवश्यकता नहीं है। जिन तैत्तिरीय आदि ब्राह्मणों के चार दिन तक अग्नि में आहुति न देने पर वह अग्नि लौकिक हो जाती है, ऐसा मान लिया जाता है, उनके हवन विधि की दृष्टि से सूखे अन्न अथवा फल आदि के द्वारा वह

कर्म करना ही चाहिये, यह सिद्धान्त है। यदि अग्नि में पतन हुआ हो तो उनके द्वारा भी होम कर्म नहीं किया जाना चाहिये। अपितु उसमें पुनः अग्न्याधान करके ही उसमें हवन आदि कर्म करने चाहिये ।

4- आशौचे श्राद्धपाते

आशौच में श्राद्धपात

प्रेतश्राद्धप्रतिसांवत्सरिकश्राद्धयोराशौचकालमध्ये प्राप्तौ सत्यां तदाशौचे व्यतीते सत्याशौचान्तद्वितीये दिने प्रशस्तकालोपलक्षिततिथौ वा कार्यम्। तस्मिन्नपि दिने मलमासादिविघ्ने प्राप्ते मलमासाव्याप्तायामनन्तर-कृष्णैकादश्यामेव कार्यम् ॥1॥

यदि प्रेतश्राद्ध तथा प्रतिवर्ष किये जाने वाले श्राद्ध सद्यः प्राप्त आशौच काल के मध्य में आ जाते हैं तो आशौच के बीत जाने पर आशौच की समाप्ति के दूसरे दिन अथवा उत्तम समय से सम्बन्धित तिथि में उपर्युक्त दोनों श्राद्ध करने चाहिये। यदि उस दिन भी मलमास आदि विघ्न उपस्थित हो जाता है तो मलमास की अवधि के बीत जाने पर कृष्ण पक्ष की एकादशी को वह श्राद्ध करने चाहिये ।

समयप्रकाशकारस्तु मलमासेऽप्यशौचकालिक-

प्रथमतिथावेव कार्यमित्याह। आशौचेन सांवत्सरिकप्रतिरोधेऽशौचान्ते मलमासेऽपि कर्तव्यमिति कृत्यसासमुच्चयकारोऽमृतनाथो मैथिलोऽप्याह

प्रतिसंवत्सरं श्राद्धमाशौचोत्पतितं च यत् ।
मलमासेऽपि कर्त्तव्यमिति भागुरिरब्रवीत् ॥
इति वचनं च तत्रोष्टम्भकतया प्रदर्शयति ॥ 2 ॥

समयप्रकाशकार ने तो इस विषय में यह कहा है कि मलमास में भी अशौच कालिक पहली तिथि को ही वह श्राद्ध करना चाहिये। आशौच से वार्षिक श्राद्ध में रुकावट आ जाने से आशौच की समाप्ति पर मलमास में भी वह श्राद्ध करना चाहिये, ऐसा कृत्यसारसमुच्चयकार अमृतनाथ मैथिल ने भी कहा है।

'यदि प्रत्येक वर्ष में किया जाने वाला श्राद्ध आशौच के मध्य में आ जाता है तो मलमास में श्राद्ध कर देना चाहिये, ऐसा भागुरि आचार्य ने कहा है।' इस वचन को भी वहाँ प्रमाण की दृष्टि से प्रस्तुत किया जाता है।

एतच्चान्ये बहवो गौडा द्रविडा वा नानुमोदन्ते। आशौचेन तुल्यन्यायान्मलमासस्यापि कर्मप्रतिबन्धकत्वौचित्यात्।

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यत्किञ्चिच्छ्राद्धिकं भवेत् ।
इष्टं वाप्यथवा पूर्तं तन्न कुर्यान्मलिम्लुचे ॥
इतिस्मरणाच्च॥3॥
किन्तु कतिपय गौड़ और द्रविड़ आचार्य इस वचन का समर्थन नहीं करते हैं क्योंकि उनके विचार से मलमास के भी आशौच के ही समान होने से उसमें भी कर्म का प्रतिषेध किया जाना ही युक्तियुक्त है।

सपिण्डीकरण क्रिया के बाद जो कोई भी श्राद्ध आदि कर्म किया जाय वह चाहे इष्ट हो अथवा पूर्त उसे मलमास में नहीं करना चाहिये – यह भी कहा गया है।

तथा चेदृशविप्रतिपत्तिस्थाने न देशाचारात् कुलाचाराद्वा व्यवस्था नेया।।4।।
और इस प्रकार के अनिश्चयात्मक प्रसङ्ग में देश अथवा कुल के आचार परम्परा की दृष्टि से व्यवस्था को स्वीकार करना चाहिये।

अथ पुनरपि यद्याशौचान्तरपातः स्यात् तदा तदशौचेऽपि व्यतीते सति तत्कार्यम् ॥5॥
इसके बाद भी यदि मध्य में पुनः कोई दूसरा आशौच आ जाय तो उसे (इष्ट-पूर्त को) आशौच के समाप्त होने पर करने चाहिये ।

शूद्रस्य तु त्रिंशद्दिवसाशौचमध्ये प्रथममासिकप्राप्तौ तच्छ्राद्धमनन्तरकृष्णैकादश्यामेव कार्यम् नत्वशौचान्तदिने। अथ कृष्णैकादश्यामपि करणाशक्तौ द्वितीयमासिकदिने प्रथममासिकविधानाभावात् कृष्णैकादश्यामेव तन्मासिकद्वयमेकत्र कार्यम् ।

शूद्रवर्ण में जायमान व्यक्ति का तो तीस दिन के आशौच के अन्तर्गत प्रथम मासिक श्राद्ध आ जाने पर उस श्राद्ध को बाद वाली कृष्णपक्ष की एकादशी को करना चाहिये न कि आशौच के अन्तिम दिन। इसी के साथ यह भी कथ्य है कि कृष्ण पक्ष की एकादशी में भी वह श्राद्ध करने में असमर्थ होने पर दूसरे मास के दिन को ध्यान में रखकर प्रथम मास का विधान न हो पाने से कृष्ण पक्ष की एकादशी को ही उन दोनों ही माह से सम्बन्धित श्राद्ध करने चाहिये ।

आशौचे सन्ध्यावन्दनम्

आशौच में सन्ध्यावन्दन

सन्ध्यावन्दनादिनित्यकर्मणस्त्वशौचे प्राप्ते केनचिदंशेन त्यागश्चात्या। गश्च विधीयते। तथा हि प्राणायामादिविशिष्टस्य निर्दिष्टरूपस्य तु तस्य परित्याग एव । मानसी तु सन्ध्या कुशवारिविवर्जिता न कदाचित्परित्याज्या। तत्र प्राणायामं त्वमन्त्रकं कुर्याद्वा न कुर्याद्वा। मार्जनमन्त्रं मनसोच्चार्य मार्जयेत्,

मार्जनं न कुर्याद्वा । अर्घ्यन्तु सूर्याय गायत्रं सम्यगुच्चार्य निवेदयेत् । प्रदक्षिणं कृत्वा सूर्यं ध्यायन् नमस्कुर्यात्, उपस्थानं तु न कुर्यात्। गायत्रीमन्त्र-जपं मानसं कुर्यात्, न कुर्याद्वेति विकल्पः । सैषा मानसी सन्ध्या भवति । तत्र जलेन सूर्यार्घदानं सावित्र्याः सम्यगुच्चारणं च कल्पसिद्धमपि नाचरन्ति बहवः शिष्टाः ।

आशौच के उपस्थित हो जाने पर सन्ध्यावन्दन आदि नित्य कर्म के कुछ अंशों में त्याग तथा कुछ अंशों में आचरण करने का विधान है। जैसे कि प्राणायाम का जो विशेष रूप निर्दिष्ट है उसका तो परित्याग ही करणीय है, किन्तु कुश और जल को छोड़कर की जाने वाली मानसिक सन्ध्या किसी भी रूप से छोड़ने योग्य नहीं है। उसमें भी मन्त्ररहित प्राणायाम करना अथवा न करने का भी विधान है। अर्थात् यह बिना मन्त्र के भी किया जा सकता है तथा नहीं भी। मार्जन मन्त्र भी मन में ही बोलकर मार्जन क्रिया की भी जा सकती है तथा नहीं भी की जा सकती है। सूर्य के लिए अर्घ्य तो गायत्री मन्त्र का अच्छी तरह से उच्चारण करके ही दिया जाना चाहिये। प्रदक्षिणापूर्वक सूर्य का ध्यान करते हुए नमस्कार किया जाना चाहिये किन्तु उपस्थान (उपासना) नहीं की जानी चाहिये । गायत्रीमन्त्र का मानसिक जप करे या न करे यह विकल्प विधान है। यह मानसिक सन्ध्या कही

जाती है। इसमें भी जल से सूर्य को अर्घ्यदान करना और गायत्री मन्त्र का स्पष्टता से उच्चारण करना कल्पग्रन्थों से प्रमाणित होने पर भी बहुत से शिष्ट जन इसका आचरण नहीं करते हैं।

राज्ञां राजकर्मणि राजभृत्यानां राजाज्ञासाधने भिषजां भैषज्ये, शिल्पिनां कारूणां दासीदासानां च प्रतिनियतेष्वेव केषुचित् स्वस्वकार्येषु शिल्पादिषु अस्पृश्यत्वादिलक्षणाशौचं नास्ति। तत्राभिषिक्तक्षत्रिया ऐन्द्रस्थानोपसन्ना राजानः। नानाद्रव्यगुणादि-विद्यानिष्णाताश्चिकित्साप्रवणा भिषजः। द्रव्योत्पादकाः सूर्पकारादयः कारवः। द्रव्ये गुणोत्पादकाश्चित्रकार-रजकादयः शिल्पिनः। इतरसाधारणा असाधारणा वा नापितादयो दासीदासाः । कर्मविशेषेष्वेवाशौच-प्रतिषेधादन्यत्र सन्ध्यावन्दनाद्यदृष्टकर्मसु दानश्राद्धादि-धर्मकृत्येषु चैषां स्वस्वजात्युक्तमशौचमवतिष्ठत एव।
राजाओं के राजकार्य में, राजसेवकों की राजा के आदेश की पालना में, चिकित्सकों के चिकित्सा से सम्बन्धित कार्य में, शिल्पकार, बढ़ई और दासीदास लोगों के अपने-अपने निर्धारित शिल्प आदि कार्यों में, अस्पृश्यत्व आदि लक्षणों से सम्बन्धित आशौच का प्रभाव नहीं होता है—क्योंकि उनमें राज्याभिषेकयुक्त क्षत्रिय, इन्द्र पद को प्राप्त कर लेने से राजा हो जाता है। अनेक प्रकार के

द्रव्यगुण आदि विद्याओं में निष्णात चिकित्साकर्म में कुशल वैद्य होते हैं। द्रव्य-पदार्थ का उत्पादन करने वाले छाज आदि बनाने वाले कारु बढ़ई कारीगर कहलाते हैं। द्रव्य में अपने कला विशेष से गुणों = चमत्कृति को पैदा करने वाले चित्रकार, रजक आदि शिल्पी कहलाते हैं। अन्य से सामान्य अथवा किसी दृष्टि से असामान्य नापित आदि दासीदास कहलाते हैं। अतः विशेष कर्म में ही आशौच का निषेध होने से इससे भिन्न सन्ध्यावन्दन आदि अदृष्टफल प्रदायक कर्मों में तथा दान, श्राद्ध आदि धार्मिक अनुष्ठानों में अपनेअपने वर्ण (जाति) से सम्बन्धित कहा गया आशौच तो होता ही है।

अशौचिगृहे आशौचोपधायककर्मविशेषे नियुक्ता अप्येते भिषजः शिल्पिनः, कारवो दासीदासाश्चान्यत्र पुनरन्येषां देवकार्यादौ तत्तद्भिषगादियोग्यकर्मसु वा यथेच्छं नियोक्तुं शक्यते। संसर्गाशौचस्य एतेष्वनभ्युपगमात् ।।

आशौचयुक्त व्यक्ति के घर में आशौच से सम्बन्धित कर्म विशेष में नियुक्त भिषज, शिल्पकार, बढ़ई और दासीदास तथा इनके अतिरिक्त देवकार्य आदि में उन-उन वैद्य, चिकित्सक आदि को उनके अनुकूल कार्यों में इच्छानुसार नियुक्त किया जा सकता है। इन सभी को एक दूसरे के सम्पर्क से

होने वाला आशौच प्रभावित नहीं करता है ।

6 –भोजनकाले आशौचप्राप्तौ ।

भोजनकाले तु भुञ्जानस्याशौचप्राप्तौ तं ग्रासं भूमौ निक्षिप्य स्नात्वा शुद्ध्येत् । तद्ग्रासभक्षणे त्वहोरात्रेण शुद्धिः। अथाशौचं श्रुतमगणयित्वा यदि तत्सर्व मेवान्नमश्नीयात्तदास्य त्रिरात्रेण शुद्धिः। अत्र कर्मणः प्रारब्धापरिसमाप्तविचारोऽशौचसङ्कोचको नाभ्युपगम्यते इति दिक् ।

इति कर्मभेदाधिकारः ।

भोजनकाल में भोजन ग्रहण करने वाले व्यक्ति के समक्ष आशौच के उपस्थित हो जाने पर भोजन के उस ग्रास (कवल) को जमीन पर रखकर स्नान करके शुद्ध होना चाहिये। यदि वह उस ग्रास को ग्रहण कर लेता है तो अहोरात्र से उसकी शुद्धि होती है और सुनाई पड़े हुए आशौच पर ध्यान न देकर यदि वह पूरा भोजन ग्रहण करता है तो उसे तीन रात्रि से शुद्धि मिलती है। यहाँ आशौच को संकुचित करने वाले कर्म के प्रारम्भ होने अथवा समाप्त न होने से सम्बन्धित बात को ग्रहण नहीं किया गया है। यह कर्मभेदाधिकार पूर्ण हुआ।

3 – द्रव्यभेदाधिकारः

1.आशौचिनः पण्याद्वस्तुग्रहणे

(आशौचयुक्त व्यक्तिकी विक्रययोग्य वस्तु लेने पर)

पण्याधिष्ठातुरशौचित्वे पण्ये प्रसारितानां सर्वेषामेव द्रव्याणां पण्याधिष्ठात्रनुज्ञया स्वहस्तेन ग्रहणे दोषाभावः। तथाविधपण्याधिष्ठातृहस्ताद् ग्रहणे तु ग्रहीतरि तदशौचं सङ्क्रमते। द्रव्यं च तद् दुष्टं देवकर्मणि नोपयुज्यते ।

विक्रययोग्य वस्तु (दुकान) के मालिक के आशौचयुक्त हो जाने पर दुकान में विक्रययोग्य वस्तुओं के विद्यमान रहने पर उनमें से किसी भी वस्तु को यदि दुकान से मालिक की अनुमति से कोई अपने हाथ से ग्रहण करता है तो उसे आशौच से सम्बन्धित कोई दोष नहीं होता है। किन्तु आशौच से प्रभावित व्यक्ति के हाथ से वस्तु के लेने पर उस के लेने वाले में भी आशौच का प्रभाव हो जाता है। और चूँकि वह द्रव्य दोषयुक्त हो जाता है अतः वह देवकार्य (पूजा आदि) में उपयोग में नहीं लिया जा सकता है। वस्तु

2 – दध्यादिद्रव्यविशेषे

दही आदि द्रव्य विशेष में

दधि - मधु - घृत क्षीर- मद्य-मांसानि लवणं जलं तृणकाष्ठ शाकफल- मूलपुष्पाणि तिलमौषधमजिनं पुस्तकादिकं च एतान्यशौच्यधिष्ठितानि स्वहस्ताद् ग्राह्याणि। अशौचिहस्ताद् ग्रहणे तु तदशौचं ग्रहीतरि संक्रमते । द्रव्यं च तद् दुष्टमकर्मण्यम् ।

दही, मधु, घी, दूध, मद्य, मांस, लवण (नमक), जल, तृण, काष्ठ, साग, फल, मूल (जड़), पुष्प, तिल, औषधि, मृगचर्म और पुस्तक आदि को आशौच युक्त व्यक्ति के यहाँ से अपने हाथ से लेना चाहिये। आशौची के हाथ से लेने पर तो वह आशौच, वस्तु को ग्रहण करने वाले व्यक्ति को प्रभावित कर देता है और वह द्रव्य दोषयुक्त हो जाने से देवपूजा आदि उत्तम कर्म के योग्य नहीं रहता है।

अपक्वं तन्दुलादिद्रव्यम् । पक्कं मोदकलड्डुकादि। एतदुभयमन्नसत्रप्रवृत्तानामशौचिनामपि तदशौचिहस्त-सम्पर्कव्यतिरेकेण स्वहस्ताद् ग्राह्यम्। अन्नसत्रादन्यत्र तु तदशौचिपक्वान्नं मोदकादिकं भुक्त्वा त्रिरात्रव्रतेन शुद्ध्यति।

चावल आदि द्रव्य को अपक्व अर्थात् न पका हुआ कहा जाता है। मोदक, लड्डू आदि पक्व पदार्थ कहलाते हैं। ये दोनों ही अन्नसत्र में लगे हुए अशौचयुक्त लोगों के भी उस आशौचयुक्त व्यक्ति के

हाथ के सम्पर्क से बचाकर अपने हाथ से लेना चाहिये। अन्नसत्र के न होने पर आशौचयुक्त व्यक्ति के पक्वान्न मोदक आदि को खाकर तीन रात उपवास करने पर शुद्धि होती है।

उभाभ्यां भोजयितृभोक्तृभ्यां दातृग्रहीतृभ्यां वा व्यवहर्तृभ्यामपरिज्ञाते त्वशौचे तदशौच्यन्नं भुक्तवतोऽपि न दोषः । आशौचसङ्क्रमणे ज्ञानस्यैव निमित्तत्वात् । तयोरेकेनाप्यशौचे परिज्ञाते तु भोक्तरि दोषः सङ्क्रमते ।

भोजन कराने वाले और भोजन करने वाले, दान देने वाले और दान लेने वाले, इस प्रकार का व्यवहार करने वाले व्यक्ति को आशौच की जानकारी न होने पर उस आशौची के अन्न को ग्रहण करने पर भी दोष नहीं लगता है क्योंकि आशौच के संक्रमण में उसकी जानकारी ही निमित्त बनती है। उन दोनों में से एक के द्वारा भी आशौच की जानकारी हो जाने पर अन्नादि ग्रहण करने वाले को आशौच प्रभावित कर देता है ।

3 – विवाहादौ भोजने

विवाह आदि से सम्बन्धित भोजन में

विवाहोत्सवयज्ञेषु प्रवृत्तेषु यद्यन्तरा सूतकं मृतकं वा जायते तदाशौचिभिन्नगोत्रैः परैरन्नं तदशौचिहस्तासंपृक्तं

प्रदातव्यम्। तत्र पूर्वसङ्कल्पितान्ने दोषाभावात् तदन्नभक्षणे भोक्तॄणां ब्राह्मणानां दोषाप्रसक्तेः।

विवाह, उत्सव, यज्ञ के चलते रहने पर यदि बीच में सूतक अथवा मरण से सम्बन्धित दोष आ जाता है तो आशौचयुक्त व्यक्ति से भिन्न गोत्र वाले दूसरे व्यक्ति से, जिसका आशौची व्यक्ति से स्पर्श न हुआ हो, अन्न दिलाये जाने का विधान है। यदि पहले से ही अन्न दान का संकल्प लिया गया है तो उसमें किसी प्रकार का दोष न होने से उस अन्न का भोजन करने से भोजन करने वाले ब्राह्मणों को दोष नहीं लगता है।

4 – भोजनमध्ये आशौचप्राप्ती

अथ भुञ्जानेषु ब्राह्मणेषु भोजनार्धे भुक्ते सत्यन्तरा सूतके मृतके वा प्राप्ते तन्नोच्छिष्टशेषं त्यक्त्वोत्थिता अन्यगेहे परकीयेन जलेनाचान्तास्ते ब्राह्मणा न दुष्यन्ति । अथ तत्रैवाशौचिनो गृहे कृताचमनानां तु दोषः स्यादेव ।

इति द्रव्यभेदाधिकारः ।।

ब्राह्मणों के भोजन करते समय यदि आधे भोजन के ग्रहण कर लेने के बीच में सूतक अथवा मृतक से सम्बन्धित दोष उपस्थित हो जाता है तो वहाँ शेष बचे हुए जूठे भोजन को छोड़कर, उठकर दूसरे के घर में उसके जल से आचमन कर लेने

पर ब्राह्मणों को दोष नहीं लगता है। उसी आशौचयुक्त व्यक्ति के यहाँ आचमन करने पर तो दोष होता ही है।यह द्रव्यभेदाधिकार पूर्ण हुआ।

4 – मृतदोषाधिकारः ।

मृतदोषाधिकार

1- अपमृत्युमरणादौ पातकिमरणादौ चाशौचाभावः (अकालमृत्यु तथा जघन्यकर्म करने वाले की मृत्यु से सम्बन्धित आशौचाभाव)

यादृशेभ्यः प्रेतेभ्यः प्रदीयमानमुदकं पिण्डदानं वा केवलमन्तरीक्षे विलीयते न तु प्रेतेभ्य उपतिष्ठते ते प्रदर्श्यन्ते ।

जिस प्रकार के प्रेत= दिवङ्गत आत्मा के लिए अर्पित किये जाने वाले तर्पण एवं पिण्डदान अन्तरिक्ष में ही अन्तर्हित (ओझल) हो जाते हैं प्रेतात्मा को नहीं प्राप्त होते हैं, उनका विवेचन इस प्रकार है

यो हि महापातकी गलत्कुष्ठी । यो वा कण्ठदेशोत्पन्नभगरोगः स्यात् । यो वा चर्मास्थ्यादिमयपात्रनिर्माता ब्राह्मणादिः स्यात् । यो वा पुंकर्मासक्तनपुंसकः स्यात्। यो वा व्याधिजनकौषधदाता, विषदाता, अग्निदाता वा

स्यात्। यो वा मनुष्यवधस्थानाधिकारी स्यात्। एवंविधानां पातकिनां कालमृतानामपि न दाहो न श्राद्धं नाप्याशौचं प्रकल्प्यते । तत् कृत्वा तप्तकृच्छ्रद्वयं कुर्यात् ।

जो व्यक्ति जघन्य पाप (ब्रह्महत्या, गोहत्या, स्त्रीवध) करने वाला तथा गलितकुष्ठ रोग से आक्रान्त होता है, जो गले में होने वाले भगरोग (कैंसर) से ग्रस्त होता है अथवा जो चमड़े, हड्डी आदि से सम्बन्धित पात्र का निर्माता ब्राह्मण आदि होता है अथवा जो पुरुष के कर्म में असमर्थ नपुंसक होता है अथवा जो मानसिक रोग को पैदा करने वाली दवाओं को देने वाला, , विष देने वाला या आग से गृह आदि को भस्मसात् करने वाला होता है, जो मनुष्य के वध अर्थात् फांसी दिये जाने वाले स्थान का अधिकारी होता है, ऐसे जघन्य पापकर्मा व्यक्तिजन के यथाकाल में मृत्यु होने पर भी अग्निदाह, श्राद्ध किसी भी क्रिया के करने का विधान नहीं है। ऐसे की मृत्यु से अशौच भी नहीं होता है। (शास्त्र का आदेश न मानकर) ऐसा कर्म करने वाला व्यक्ति उस कर्म के पश्चात् दो बार तप्तकृच्छ्र प्रायश्चित्त कर्म करे ।

अथ यदि शृङ्गिनख्यादिपशुभिः स्त्रिया वा सह क्रीडां कुर्वन् प्रमादतो म्रियमाणः स्यात्। यदि वा मरणोद्देशप्रवृत्तो विद्युद्धतः स्यात् । यदि वा

पाखण्डाश्रयितया नित्यपरद्वेषितया वा क्रोधादिना वा स्वयं प्रायविषाग्न्यादिशस्त्रोद्बन्धनजलगिरितरु-प्रपतनादिप्रयोगेण म्रियमाणः स्यात् । यथाकथञ्चिद्वा शास्त्राननुमतं बुद्धिपूर्वकमात्मघाती स्यात् । तत् कृत्वा तप्तकृच्छ्रद्वयं कुर्यात् ।

इसके साथ यदि कोई व्यक्ति सींग, नख आदि से युक्त हिंसक पशु अथवा स्त्री के साथ रमण करता हुआ प्रमाद से मृत्यु को प्राप्त हो जाता है अथवा यदि मृत्यु की दृष्टि से प्रवृत्त व्यक्ति की विद्युत् (वज्र) से मृत्यु होती है अथवा पाखण्ड का सहारा लेकर अथवा हमेशा दूसरों से द्वेष करता हुआ अथवा क्रोध आदि से स्वयं विष, आग, शस्त्र, फांसी, जल, पहाड़, वृक्ष आदि के प्रयोग से मृत्यु को प्राप्त होता है अथवा शास्त्रवचन के विरुद्ध जाकर किसी विशेष ढंग से आत्महत्या करने वाला होता है, ऐसे व्यक्ति से सम्बन्धित तप्तकृच्छ्र प्रायश्चित्त कर्म को दो बार करने का विधान है।

अथ यो ब्राह्मणविषयापराधकरणान्निहतः स्यात् । यो वा बुद्धिपूर्वकं ब्राह्मणेन हतः स्यात्। परदारान् हरन् द्वेषात् तत्पतिभिर्निहतः स्यात् । यो वा चौर्यादिदोषेण राज्ञा हतः स्यात् । यो वा कलहं कुर्वाणो विप्रादिः कदाचिदसमानवर्णैश्चाण्डालाद्यैर्निहतः स्यात् । यो वा नागप्रियकारितया नागाहतः स्यात् । एवंविधानां विशिष्टदोषनिमित्तकमृत्युमतामपि न दाहो न श्राद्धं

नाप्याशौचं प्रकल्प्यते तत् कृत्वा तप्तकृच्छ्रद्वयं कुर्यात् ।

इसी प्रकार से जो व्यक्ति ब्राह्मण से सम्बन्धित किये गये निषिद्ध आचरण के कारण मारा गया हो अथवा जो विशेष बुद्धि के प्रयोग से ब्राह्मण के द्वारा मारा गया हो। परायी स्त्री का अपहरण करने के परिणाम से द्वेषवश उसके पति आदि से मारा गया हो। अथवा जो चोरी आदि निन्दित कर्म के अपराध से राजा के द्वारा विशेष रूप से दण्डित किया गया हो अथवा जो ब्राह्मण आदि कलह (विवाद) करते हुए किसी निकृष्ट वर्ण चाण्डाल आदि से मारा गया हो अथवा जो नाग (सर्पविशेष) से सम्बन्धित कार्य करता हुआ उससे डंस कर मृत्यु को प्राप्त हुआ हो। इस प्रकार के विशेष दोष के निमित्त वाले मृत्यु को प्राप्त हुए व्यक्ति का भी अग्निदाह, श्राद्ध, आशौच आदि कोई भी क्रिया नहीं करनी चाहिये। ऐसा करने वाले को तप्तकृच्छ्र प्रायश्चित्त कर्म को करने का विधान है।

एतत्सर्वमवैधे दर्पकृते च मृत्युनिमित्ते कर्मणि द्रष्टव्यम्। वैधे प्रमादकृते वा मरणे तु तेषामशौचमौर्ध्वदैहिकादिकं व सर्वं यथायथमस्त्येव । एवमेव कृतप्रायश्चित्तस्य गलत्कुष्ठिनोपि दाहाशौचादिकं भवत्येव । तथा युद्धे स्वाम्यर्थं म्लेच्छतस्करादिभिरपि निहतस्य विप्रादेर्दाहाशौचादिकं भवत्येव । युद्धे

शस्त्रेणाभिमुखहतस्य दाहादिकं प्रवर्त्तते सद्यः शौचं च । गोविप्रपालनेऽभिमुखयुद्धे हतस्य सद्यः शौचम्। पराङ्मुखहतस्य तु तस्य त्रिरात्रम् । गवार्थे ब्राह्मणार्थे वा दण्डेन युद्धे हतस्याहोरात्रमाशौचम्। नृपतिरहितयुद्धे लगुडादिहतस्य च त्रिरात्रम् ।

ये सभी अवैध तथा अभिमान के आवेश से किये गये मृत्यु निमित्तक कर्म में देखा जाना चाहिये। वैध (शास्त्रविहित) अथवा प्रमाद के वशीभूत होकर मृत्यु को प्राप्त होने की स्थिति में उनके आशौच कर्म एवं और्ध्वदैहिक आदि सारे कर्म वर्ण के अनुसार पहले जैसे ही हैं। इसी प्रकार से प्रायश्चित्त कर्म किये हुए गलितकुष्ठ वाले व्यक्ति का भी अग्निसंस्कार और शुद्धिकरण आदि क्रियायें होती ही हैं। इसी प्रकार रणक्षेत्र में अपने अधिपति के प्रयोजन की सिद्धि के लिए म्लेच्छ (कुत्सितकर्मा) तस्कर आदि के द्वारा मारे गये ब्राह्मण आदि का अग्निसंस्कार, शुद्धीकरण आदि होता ही है। युद्ध में शस्त्र से आमने-सामने मृत्यु को प्राप्त व्यक्ति का अग्निसंस्कार तथा सद्यः शौच क्रियाओं का विधान है। गाय, ब्राह्मण की रक्षा करने में सम्मुख युद्ध में मारे गये व्यक्ति के सद्यः शौच का विधान है। पीछे से मारे गये व्यक्ति से सम्बन्धित तो तीन दिन का आशौच होता है। गाय, ब्राह्मण आदि के प्रयोजन की सिद्धि करते हुए दण्ड से अथवा युद्ध में मारे जाने पर अहोरात्र से सम्बन्धित आशौच का विधान

है। राजाविहीन युद्ध में लाठी आदि से मारे जाने पर तीन रात्रि का आशौच होता है।

लौकिकपारिभाषिकोभयविधशस्त्रघातेतरक्षतेन तु सप्ताहमध्ये मरणे सर्ववर्णानां त्र्यहम् । सप्ताहादूर्ध्वं तु मरणे सति स्वजात्युक्तं सम्पूर्णाशौचमेव । लौकिकेन पारिभाषिकेण वा शस्त्रघातेन त्र्यहमध्ये मरणे त्र्यहाशौचम्, त्र्यहादूर्ध्वं तु मरणे सर्ववर्णानां स्वजात्युक्तं प्रकृताशौचमेव ।

लोक में प्रयोग में लाये जाने वाले और तकनीकी दोनों ही प्रकार के शस्त्रों तथा इनसे भिन्न अन्य आयुधों से भी घायल हुए व्यक्ति के सात दिन के अन्दर मृत्यु को प्राप्त हो जाने पर सभी वर्गों को तीन दिन का आशौच होता है। सात दिन के बाद मृत्यु की स्थिति में अपनी जाति से सम्बन्धित सम्पूर्ण आशौच का विधान है। लौकिक अथवा तकनीक वाले शस्त्र से घायल होने से तीन दिन के अन्दर मृत्यु हो जाने पर तीन का आशौच तथा तीन दिन के पश्चात् मृत्यु की स्थिति में सभी वर्गों के निर्दिष्ट आशौचकाल होते हैं।

खड्गशरच्छुरिकादिघातो लौकिकशस्त्रघातः । वज्रपाताद्, वह्निदाहात्, जलप्रवेशात्, उच्चदेशप्रपतनात्, संग्रामात्,

शृङ्गिनखिदंष्ट्रिव्यालादिघातात्, विषभक्षणात्, चौरचाण्डालादिभिर्घातात्, उद्बन्धनाद्वा, मरणं शास्त्राननुमतम्। अनशनादिमरणं च पारिभाषिकशस्त्रघातः। सेयं परिभाषा देवीपुराणे समाम्नाता ।

इति मृतदोषाधिकारः ।

तलवार बाण छुरी आदि से किये गये घात को लौकिकशस्त्रघात कहा जाता है। तथा वज्रपात (बिजली गिरने से) आग में जलकर मरने से, पानी में डूबकर मरने से, ऊँचे पहाड़ आदि से गिरकर मरने से, युद्ध में मृत्यु को प्राप्त होने पर, सींग, नख, दांत वाले हिंसक जीव तथा मगरमच्छ आदि के आघात से, जहर खाने से, चोर, चाण्डाल (अधम) आदि के घात से, फांसी के फन्दे से झूल जाने से मृत्यु हो जाना शास्त्र सम्मत नहीं है। अनशन आदि करके मृत्यु का वरण करना पारिभाषिक शस्त्रघात कहलाता है । यह परिभाषा देवीपुराण में अच्छी तरह से बतलायी गयी है । यह मृतदोषाधिकार पूर्ण हुआ।

5-वचनाधिकारः ।

(वेदाग्निमदादिब्राह्मणादीनां वचनादाशौचाभाव:)

(वेदाध्यायी एवं अग्निहोत्रनिष्ठ ब्राह्मण आदि के वचन से आशौच का प्रभाव न होना)

सासार्थज्ञानवेदवतः श्रौतस्मार्त्ताग्निद्वयवतो वेदविहित-सकलक्रियावतो विप्रस्य सपिण्डमरणादौ सद्यः शौचम् || 1 ||

छहों अंगों सहित (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द और ज्योतिष) अर्थावबोधपूर्वक वेदों का ज्ञान रखने वाले श्रौत- स्मार्त दोनों ही प्रकार की अग्नि का अनुष्ठान करने वाले, वेदों में प्रतिपादित सभी धार्मिक क्रियाओं का अनुष्ठान करने वाले ब्राह्मण को सपिण्ड में मृत्यु - जन्म आदि की स्थिति में सद्यः शौच का विधान है।1।

वेदार्थमविजानतस्तु सामवेदवतोऽग्निद्वयवतः क्रियानिष्ठस्यैकाहः ॥ 2 ॥

वेद के अर्थ को न जानने वाले तथापि छः अङ्गों सहित वेद और श्रौत-स्मार्त दोनों ही प्रकार की अग्नि से सम्बन्धित अनुष्ठान करने वाले को एक दिन का आशौच होता है।2।

साङ्गसार्थज्ञानवेदवतोऽग्निद्वयवतोविहितैकदेशक्रियावतोऽप्येकाहः।।3।।

छः अङ्गों सहित वेद के अर्थावबोधपूर्वक

श्रौतस्मार्त दोनों ही प्रकार की अग्नियों से विहित एकदेशीय कर्म का अनुष्ठान करने वाले को भी एक दिन का आशौच होता है।3।

साङ्गसार्थज्ञानवेदवतः स्मार्तैकाग्निमतः श्रौताग्निहीनस्य क्रियानिष्ठस्य त्र्यहः॥4॥

छः अङ्गों सहित अर्थावबोध-पूर्वक वेद का स्वाध्याय करने वाले श्रौताग्निविरहित केवल स्मार्त अग्निहोत्र कर्म करने वाले को तीन दिन का आशौच होता है।4।

वेदशून्यस्याग्निद्वयवतः क्रियानिष्ठस्य त्र्यहः।।5।।

शून्य होकर भी श्रौत-स्मार्त दोनों अग्निहोत्र कर्म करने वाले को तीन दिन का आशौच होता है।5।

साङ्गसार्थज्ञानवेदतोऽप्यग्निद्वयहीनस्य चतुरहः ||6||

छः अङ्गों सहित वेद के अर्थ को समझने वाले किन्तु दोनों ही प्रकार के अग्निहोत्र कर्म का अनुष्ठान न करने वाले को चार दिन का आशौच होता है।6।

अङ्गानभिज्ञस्य वेदवतोऽग्निद्वयहीनस्य पञ्चाहः ।।7।।

छः अङ्गों का ज्ञान रखने वाले वैदिक पद्धति से दोनों ही प्रकार के अग्निहोत्र कर्म न करने वाले को पांच दिन का आशौच होता है।7।

वेदैकदेशाऽध्यायिनो अग्निद्वयहीनस्य षडहः ॥ 8 ॥
वेद के एक भाग का अध्ययन करने वाले तथा दोनों प्रकार के अग्निहोत्र कर्म से रहित को छः दिन का आशौच होता है ।8।

अनधीतवेदा अनग्नयो जातिब्राह्मणा ब्राह्मणब्रुवा इत्युच्यन्ते। तेषां दशाहमाशौचम्। अथापकर्षकवेदाग्निशून्यतया तत्रापवादाप्रसक्ता-वौत्सर्गिकाशौचप्रवृत्तेर्निराबाधात् ॥9॥
वेद का स्वाध्याय न किये हुए अग्निहोत्र कर्म का भी अनुष्ठान न करने वाले जाति से ब्राह्मण 'ब्राह्मणब्रुव' कहे जाते हैं। उन्हें दश दिन का आशौच होता है। इनसे भी ह्रास को प्राप्त हुए वेद एवं अग्नि दोनों से ही रहित होने से, उनमें भी लोकनिन्दा रहित होने पर भी आशौच तो होता ही है ।9।
सर्वे चैते सद्यः शौचादिका अपकर्षपक्षाः सपिण्डान्तराणामशौचिनां संसर्गाभावे सति बोध्याः । सति तु संसर्गे तेषां निमित्तिनामिवैषां वेदाग्निमतामप्यशौचं दशाहव्याप्यमेवोपधीयते। न त्वपकर्षः।
सामान्य रूप से बिना किसी रुकावट के आशौच प्रभावित करता है। ये सभी सद्यःशौच आदि से सम्बन्धित अपकर्ष पक्ष (निरन्तर ह्रास) सपिण्ड से

पृथक् आशौच युक्त व्यक्तियों से सम्पर्क न होने पर होते हैं—यह समझना चाहिये । सम्पर्क की स्थिति में उन अन्य निमित्तों की ही तरह इन वेद एवं अग्नि से सम्बन्धित लोगों को भी दशदिवसपर्यन्त आशौच होता है, इनमें किसी प्रकार की न्यूनता नहीं होती है।

संसर्गश्चात्रैकत्रशयनासनभोजनादिलक्षणो नवविधो द्रष्टव्यः । तानाह देवलः -
आलापस्पर्शनिःश्वासात् सहयानासनाशनात् ।
याजनाध्यापनाद् यौनात् पापं सङ्क्रमते नृणाम् ॥
इति विशेषश्चात्र त्रिषष्टितमे प्रतिज्ञावाक्ये द्रष्टव्यः ॥
यहाँ संसर्ग अर्थात् सम्पर्क भी एक स्थान पर शयन, उपवेशन, भोजन, आदि लक्षणों से नौ प्रकार का समझना चाहिये। जैसा कि महर्षि देवल ने कहा हैपरस्पर बातचीत, एक दूसरे के स्पर्श, एक दूसरे से श्वास का मिलना, एक साथ सवारी करना, एक आसन पर बैठना तथा भोजन करना, एक साथ यज्ञ कर्म कराना, अध्यापन करना तथा शारीरिक सम्बन्ध बनाना – इनसे मनुष्यों में पाप का संक्रमण होता है।

क्षत्रियस्य वेदाग्निमत्वे क्रियानिष्ठत्वे च दशाहो न तु द्वादशाहः ॥ 1 ॥
इनसे सम्बन्धित अन्य विशेष बातें तिरसठवें प्रतिज्ञावचन में समझना चाहिये। यदि क्षत्रिय वेदों

का ज्ञाता तथा अग्निहोत्री है तो उसे दश दिन का ही आशौच होता है न कि बारह दिन का।

तु वैश्यस्य वेदाग्निमत्वे क्रियानिष्ठत्वे च द्वादशाहो न तु पञ्चदशाहः ॥ 2 ॥

वैश्य के वेदों का ज्ञाता तथा अग्निहोत्री होने पर बारह दिन का आशौच होता है न कि पन्द्रह दिन का ।

श्रद्धया द्विजशुश्रूषां पञ्चयज्ञादीनि च शूद्रविहितकर्माणि नियमेन कुर्वाणस्य न्यायवर्तिनः शूद्रस्य पञ्चदशाहाशौचं न तु मासम् ।

श्रद्धापूर्वक द्विज वर्ग की सेवा-शुश्रूषा करने वाले, पञ्च महायज्ञ का भी पालन करने वाले तथा शूद्रविहित कर्म का भी नियमपूर्वक सम्पादन करने वाले न्यायाचारी शूद्र को पन्द्रह दिन का ही आशौच होता है न कि एक मास का ।

2 – कर्मविशेषेष्वेवायमपवादो न सर्वत्र ।

यह सामान्य नियम को बाधित करने वाला विशेष नियम विशेष कर्म में ही चरितार्थ होता है, सर्वत्र नहीं

सर्वं चेतदाशौचसङ्कोचविधानं प्रतिनियतेष्वेव होमाध्ययनादिकर्मस्वनुज्ञालाभार्थं बोध्यम्। न तु

सन्ध्यावन्दने पञ्चमहायज्ञे, मृत्तिकाग्रहणमार्जन-प्राणायामतर्पणाद्युपेतप्रधानक्रियारूपस्नानात्मकनित्यकर्मसु स्मार्तकर्मसु कुलान्नभोजने दानप्रतिग्रहयोः काम्यहोमस्वाध्यायादिषु चानुष्ठानानुज्ञानार्थमयमाशौचसङ्कोच उपकल्प्यते। तेनेदं दशाहाद्याशौचं कुलान्नभोजनादिनिवर्तकं स्वाध्यायहोमदा न प्रतिग्रहादिविशिष्टकर्मप्रतिबन्धकमपि वेदाग्निमतां क्रियानिष्ठानां नित्यकर्त्तव्यस्य वेदाध्ययनाध्यापनाग्निहोत्रादिकर्मणः केवलमेकाहादिलक्षणमत्यल्पकालमेव प्रतिबन्धकं भवति न तु दशाहादिपर्यन्तमधिककालमित्येतावन्मात्रे तात्पर्यं नेयम् ।

सभी प्रकार के ये आशौचसङ्कोचविधान कतिपय निश्चित हवन, अध्ययन आदि कर्मों के लिए ही आदिष्ट है न कि सन्ध्यावन्दन, पञ्चमहायज्ञ, मृत्तिकाग्रहण, मार्जन (शुद्धीकरण) प्राणायाम, तर्पण आदि से युक्त प्रधान क्रिया रूप नित्य कर्मों में, स्मार्त कर्मों में, कुलान्न भोजन में तथा दान तथा प्रतिग्रह में काम्य कर्मों में, होम तथा स्वाध्याय आदि में अनुष्ठान के व्यवस्थापन हेतु इस आशौच में संकोच (शिथिलता) की व्यवस्था की गयी है। इससे यह दशदिवसीय आदि से सम्बन्धित आशौच, कुल आदि के अन्न ग्रहण का निषेध करने वाले, स्वाध्याय, होम, दान-प्रतिग्रह आदि कर्म विशेष के प्रतिबन्धक को भी वेदअग्निहोत्र से सम्बन्धित

स्वाध्याय अनुष्ठान आदि क्रियाओं में लगे हुए, नित्य किये जाने योग्य वेदाध्ययनाध्यापन, अग्निहोत्र आदि कर्म के केवल एक दिवसीय, बहुत थोड़े समय से सम्बन्धित निषेध होता है न कि दश दिवसादि– अधिक समय तक, इसका इतना ही आशय ग्रहण करना चाहिये ।

यत्रापि वेदाग्निमतामघसंकोचो विहितस्तत्राप्याशौचे सत्यग्निमता श्रौताग्नौ शुष्कान्नेन फलेन वा होमः कार्यः । स्मार्त्ताग्नौ त्वकृतान्नेन कृताकृतान्नेन वा परद्वारा होमः कारयितव्यः । कृतान्नं तु परद्वारापि न हावयेत् । ओदनसक्तुलाजमोदकलड्डुकादिकं कृतान्नम्। तन्दुलमाषमुद्गादिकं कृताकृतान्नम्। व्रीहियवगोधूमादिकं त्वकृतान्नम् ।

जहाँ भी वेदाध्यायी एवं अग्निहोत्रकर्मा व्यक्ति को आशौच रूप अघ में कमी की बात कही गयी है वहाँ भी आशौच के होने पर अग्निहोत्री को श्रौताग्नि में सूखे अन्न अथवा फल से हवन करना चाहिये । स्मार्त अग्नि में तो अकृतान्न अथवा कृताकृतान्न से दूसरे व्यक्ति से होम करवाना चाहिये । कृतान्न तो दूसरे से भी हवन रूप में नहीं डालना चाहिये । ओदन (भात) सत्तू लाजा (लावा) मोदक, लड्डू ये सभी कृतान्न (निर्मित) हैं। चावल, उड़द, मूंग आदि कृताकृतान्न (निर्मित होने पर भी

अपक्वान्न) हैं। धान्य, यव गोधूम आदि अकृतान्न हैं।

3 – नाडीच्छेदात्प्राक् प्रतिग्रहादिकम् ।

नालच्छेद से पूर्व दानग्रहण एवं दानप्रदान

कुमारप्रसवे नाडीच्छेदात्पूर्वं हिरण्यधान्यगोवस्त्रकम्बलादिप्रावरणतिलान्नगुडसर्पिषां दानं प्रतिग्रहं वा कुर्वन् न दोषेण युज्यते ॥ 1 ॥
पुत्र जन्म पर नालच्छेदन से पहले सुवर्ण, धान्य, गाय, वस्त्र, कम्बल आदि ओढ़ने के वस्त्र, तिल, अन्न, गुड़, घी इन सभी का दान लेना या देना दोषयुक्त नहीं माना जाता है।1।

पुत्रोत्पत्तौ नाडीच्छेदात् पूर्वं जातश्राद्धमप्यसिद्धान्नेन कुर्वन् न दुष्यति ॥2॥
पुत्र जन्म पर नालच्छेद से पहले न पके हुए अन्न से श्राद्ध कर्म करने पर भी व्यक्ति दोषयुक्त नहीं होता है । 2 ।

जननदिवसात् षष्ठेऽहनि च जन्मदानां षोडशमातॄणां षष्ठिकासहितानां रात्रियागं कुर्वन् न दुष्यति ॥3॥
जन्म के दिन से छठें दिन जन्म देने वाली षष्ठिका सहित सोलह माताओं (षोडशमातृका) से सम्बन्धित रात्रियाग करने पर भी व्यक्ति दोषयुक्त

नहीं होता है। 3 ।

जन्माशौचे मरणाशौचेऽपि वा स्थिते यदि पुत्रजन्म स्यात् तदा पुत्रजन्मनिमित्तकं जातेष्टिसंस्कारादिकं कुर्यादेव न त्वाशौचात्तन्निवृत्तिः।।3।।

जन्माशौच अथवा मरणाशौच होने पर यदि पुत्रजन्म होता है तो पुत्रजन्म से सम्बन्धित जातेष्टिसंस्कार आदि करने ही चाहिये न कि आशौच के उपस्थित हो जाने से उस कर्म से छुटकारा मिल जाता है। जन्माशौच अथवा मरणाशौच के आ जाने पर भी यदि पिता आदि के सपिण्डजन का निधन हो जाता है तो उस निधन (मृत्यु) के निमित्त से अन्त्येष्टि कर्म आदि करने ही चाहिये। अशौच के होने से उसकी निवृत्ति स्वतः हो जाती है ऐसी बात नहीं है ।

जन्माशौचे मरणाशौचेऽपि वा स्थिते यदि पित्रादिसपिण्डानां मरणं स्यात् तदा मरणनिमित्तकमन्त्येष्टिकर्मादिकं कुर्यादेव न त्वशौचात्तन्निवृत्तिः ।। 1 ।।

4 – आशौचान्तरे सत्यपि पिण्डदानम्
(अन्य आशौच के उपस्थित हो जाने पर भी पिण्डदान)

प्रारब्धे प्रेतपिण्डे यदि मध्ये जननं स्यात् तदा शेषानप्याशौचपिण्डान् यथाविधि यथोपक्रमं दद्यादेव नत्वपूर्वाशौचात् तन्निवृत्तिः ॥

मरण से सम्बन्धित पिण्डदान प्रक्रिया के प्रारम्भ हो जाने पर यदि बीच में किसी का जन्म हो जाता है तो बचे हुए आशौच से सम्बन्धित पिण्ड को निर्धारित रीति तथा व्यवस्था के अनुसार दिया ही जाना चाहिये न कि बाद के आशौच होने से इसकी निवृत्ति हो जाती है।

पित्राशौचमध्ये मातृमरणे पित्राशौचान्तरं पक्षिणीवृद्धिः तत्र तथाविधे मातुः पक्षिणीमध्ये पितुरेकादशाहश्राद्धं कुर्यादेव न त्वाशौचान्निवृत्तिरिति देवयाज्ञिकादयः प्राहुः। पक्षिणीपर्यन्ताशौचनिवृत्तौ सत्यां ततः पितुरेकादशाहनिमित्तकमाद्यश्राद्धं कुर्यादिति मिताक्षराकारादयः। तेनात्र विकल्पः। विकल्पे त्वाचाराद् व्यवस्था एवमन्यत्रापि यथायथमूह्यम् ।

इति वाचनिकाधिकारः ।

पिता के आशौच के मध्य में यदि मातृ सम्बन्धी आशौच उपस्थित हो जाता है तो पिता के आशौच के पश्चात् पक्षिणी दिन का आशौच होता है, (ऐसा पूर्व में कहा जा चुका है।)उस स्थिति में माता के पक्षिणी दिन के अन्दर में पिता का एकादशाह श्राद्ध करना ही चाहिये । ऐसा नहीं है कि आशौच

से उसकी निवृत्ति हो जायेगी, ऐसा देवयाज्ञिक आदि आचार्यों ने कहा है। पक्षिणी पर्यन्त आशौच से निवृत्ति हो जाने पर पिता के एकादशाह निमित्तक प्रथम श्राद्ध किये ही जाने चाहिये, ऐसा मिताक्षराकार आदि का विचार है। चूँकि यहाँ वैकल्पिक व्यवस्था दी गयी है और विकल्प में आचार व्यवस्था को ध्यान में रखना चाहिये । इसी प्रकार से अन्य स्थलों पर भी विधानानुरूप समझना चाहिये । यह वाचनिकाधिकार पूर्ण हुआ।